संगति
भाग – ६

'संगति' विषय पर विस्तारपूर्वक विचार करने के लिए **'संगति' करने की विधियों** के विषय में विचार पिछले लेख में प्रारम्भ की थी ।

पिछले भाग में तीन विधियों —

'शारीरिक संगति', 'मानसिक संगति' तथा **'व्यक्तित्व की संगति'** के विषय में विचार की जा चुकी है । इस लेख में संगति करने की कुछ अन्य विधियों के बारे में विचार प्रस्तुत हैं ।

4. मृतकों की संगति :-

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में निकट सम्बन्धियों, जैसे कि — माँ, बाप, बहन, भाई, पति, पत्नि, बच्चे, मित्र अथवा अन्य प्यार वाले जीवों की मृत्यु होती रहती है । इनमें से **कुछ 'मौतों'** का मन को अत्यन्त दुख तथा **सदमा पहुँचता है ।** ऐसी **दुखदायी मौतों को** बार-बार याद कर के अथवा **'चर्चा'** कर के हम इन **'सदमों'** को अपने **हृदय की गहरी तह अथवा 'अन्तःकरण' में उतार लेते हैं ।** जब भी इन मृतकों की यादें उभर कर सामने आती हैं, तब उन के **'मोह'** में हम अत्यन्त दुखी होते हैं।

इसी प्रकार किसी विरोधी या घृणित प्राणी की **याद** आ जाये, तब हमारे अन्दर **तीव्र 'घृणा की अग्नि' भभक उठती है,** जिस के सेंक से **हमारा तन, मन, हृदय बहुत देर तक जलता, भुजता, कुढ़ता रहता है ।** ऐसी **घृणित यादों को बार-बार दुहराने से हमारे हृदय में उस घृणित व्यक्ति के प्रति एलरजी** (allergy) **हो जाती है।** यद्यपि वह व्यक्ति मर-खप भी जाये तो भी उसकी **किंचित याद या ख्याल द्वारा 'संग' करते ही हमारे तन-बदन में आग लग जाती है ।**

'अहम्' में से 'मैं-मेरी' का अहसास उत्पन्न होता है — जिस कारण हमें मायिकी 'पदार्थों' या शरीरों से **अपनत्व** अथवा **पकड़ हो जाती है ।** इस

'मैं-मेरी' के अपनत्व अथवा पकड़ को ही ' मोह' कहा जाता है।

व्यक्ति की मृत्यु होने पर शरीर तो नष्ट हो जाता है, परन्तु 'आत्मा' शरीर में से निकल जाती है।

जीवित शरीरों से लगातार **'संग'** अथवा मेल-मिलाप से **'मोह' हो जाना स्वाभाविक है** तथा इस **'मोह-ममता' के निरन्तर अभ्यास से यह 'मोह' हमारे चित्त की भीतरी तहों में उतर जाता है** — जिस कारण उसकी **मृत्यु होने के पश्चात् भी 'मोह' का अंश उसी प्रकार हमारे अन्तःकरण में बना रहता है।**

इस प्रकार —

प्यार अथवा 'मोह' वाले 'मृतकों' तथा

'नफरत' वाले मृतकों

की **यादों द्वारा 'मेल' या संगति' अत्यन्त दुख-क्लेश, कुढ़न का कारण बनता है।** ऐसी घृणित तथा दुखदायी 'मृतकों' की **'ख्याली संगति'** को हम **बार-बार घोटते रहते हैं** — जिस कारण इनके **'सदमे' या घृणा की रंगत** हमारे अन्तःकरण में और गहरी उतरती जाती है, जो कई जन्मों तक दुख-क्लेश का कारण बनती है।

दूसरे शब्दों में, ऐसे **'मोह' या 'घृणा'** वाले कई मुर्दे हम ने अपने **अन्तःकरण में व्यर्थ, खाह-म-खाह 'बसाये' हुए हैं,** जो कई जन्मों तक अत्यन्त **दुख-क्लेश-कुढ़न का कारण बनते हैं ।**

इहु जगु मोह हेत बिआपिंत दुखु अधिक जनम मरणं ।। (पृ ५०५)

इस प्रकार हम अपने हृदय में अथवा **अन्तःकरण में स्वयं बसाया हुआ 'कब्रिस्तान' लिये घूमते हैं।**

दूसरे शब्दों में ऐसी **'मोह-माया' वाले मुर्दों की 'यादें'** — 'भूत-प्रेत' की भांति हमारे अन्तःकरण के किसी कोने में **बसी हुई हैं,** जिनका हम **'मोह' की भावना द्वारा पालन-पोषण करते रहते हैं** तथा इनकी याद द्वारा **'संगति' करके दुख-क्लेश भोगते रहते हैं ।**

इन मृतकों को **'याद' अथवा 'स्मरण' करना ही** अपने अंदर **'भूतों' को 'जगाना' है तथा उनकी 'कुसंगति' करनी है ।**

मरे हुए अनुपस्थित 'शरीर' को याद करना तथा उस मृतक की रव्यालों द्वारा संगति करके दुखी होना, हमारी अज्ञानता का घोर भ्रम है — जिसमें सारा संसार फंसा है ।

वीरवारि वीर भरमि भुलाए ।।
प्रेत भूत सभि दूजै लाए ।। (पृ ८४१)

गुरबाणी में ऐसे झूठे मोह-प्यार को यूं दर्शाया है :—

नानक मनमुखि अंधु पिआरु ।। (पृ १३८)

एतु मोहि फिरि जूनी पाहि ।।
मोहे लागा जम पुरि जाहि ।। (पृ ३५६)

मूए कउ रोवहि किसहि सुणावहि
भै सागर असरालि पइआ ।। (पृ ९०६)

बालकु मरै बालक की लीला ।। कहि कहि रोवहि बालु रंगीला ।।
जिसका सा सो तिन ही लीआ भूला रोवणहारा हे ।।
भरि जोबनि मरि जाहि कि कीजै ।। मेरा मेरा करि रोवीजै ।।
माइआ कारणि रोइ विगूचहि धिगु जीवणु संसारा हे ।। (पृ १०२७)

इसी प्रकार **जीवित वैरी के प्रति घृणा के भावों के अभ्यास द्वारा हमारे चित्त की भीतरी तह में इस 'वैर' की घृणा उतर जाती है।** समयोपरान्त **यह घृणा, एलरजी का रूप धारण कर लेती है** — जो वैरी की **मृत्यु उपरान्त भी उसी प्रकार बनी रहती है।**

जब भी ऐसे मरे हुए घृणित व्यक्ति की **'याद'** आये, तब हमारी **दृढ़ की हुई एलरजी का 'अंश' पुनः 'जाग' उठता है तथा हम** ईर्ष्या, द्वेष, वैर-विरोध, नफरत, क्रोध तथा बदले की भावना में **व्यर्थ जलते , भुनते तथा कुढ़ते रहते हैं ।**

इस प्रकार **'घृणा' की अग्नि अथवा 'एलरजी' के प्रत्येक दौर** से हमारा तन-मन जल-भुनकर काला स्याह तथा **कठोर होता जाता है** । अपितु अपनी घृणा की तीक्ष्ण किरणों द्वारा **मृत 'वैरी' की आत्मा को जा सुलगाता है।**

इस प्रकार हमारी मृत्यु के पश्चात भी **घृणा की रंगत से लथ-पथ हमारी 'आत्मा', 'भूत-प्रेत' का सूक्ष्म रूप धारण कर लेती है** तथा पुराने 'बदले'

की भावना की पूर्ति के लिए हमारी आत्मा **'भूत' बनकर वैरी को जा चिपकती है तथा उसे दुखी करके अपनी सन्तुष्टि करती है ।**

इसी तीक्ष्ण 'मोह' या **घृणा की अंश, 'रंगत' अथवा एलरजी कारण हमें 'भूत-प्रेत' की योनि धारण करनी पड़ती है —** जो **अत्यन्त दुखदायी 'घोर नर्क का द्वार' है।**

माइआ मोहु परेतु है कामु क्रोधु अहंकारा ॥
एह जम की सिरकार है
एन्हा उपरि जम का डंडु करारा ॥ (पृ ५१३)

सपु पिड़ाई पाईऐ बिखु अंतरि मनि रोसु ॥
पूरबि लिखिआ पाईऐ किस नो दीजै दोसु ॥ (पृ १००९)

'मोह' या 'घृणा' के तीक्ष्ण भाव, दोनों रूहों के लिए, जीते जी तथा मृत्यु के बाद भी, अत्यन्त दुखदायी तथा हानिकारक हैं ।

इन विचारों से स्पष्ट है कि 'जीवित' व्यक्तियों की 'कुसंगति' से 'मृतकों' की 'कुसंगति' ज्यादा हानिकारक तथा अत्यन्त दुखदायी है।

ऐसी 'जीवित' तथा 'मृत' व्यक्तियों की **कुसंगति से 'बचने' के लिए** गुरबाणी में ये नुस्खे बताये गये हैं —

'रोसु न काहू संग करहु'
'आपन आपु बीचारि'
'पर का बुरा न राखहु चीत'
'बुरे दा भला करि'
'गुसा मनि न हढाइ'
'निंदा भली किसै की नाही'
'खिमा धीरज' की आदत
'ना को बैरी नही बिगाना'
'दइआ जाणै जीअ की'
'चलण जाणि जुगति मिहमाणा'
'परनिंदा सुणि आपु हटावै'
'छोडि अउगण चलीऐ'

इसका तात्पर्य यह है कि जब कोई हमसे ज्यादती या ना इन्साफी करे, तब **मन में 'रोष' करने की अपेक्षा,** उस बात को उसी वक्त **होने दो अथवा कोई बात नहीं कह कर भुला दो** तथा उसे **'क्षमा' कर दो** । यदि उसी वक्त **'रोष'** वाली बात को भुलाया न गया तो, यह **गिले-शिकवे** हमारे मन की **तख्ती पर अंकित हो जायेगें तथा धीरे-धीरे ये अन्तःकरण में धंस, बस, समा कर एलरजी बन जायेगी, जो मृत्यु उपरान्त भी हमारे साथ ही जायेगी । इस प्रकार हम इन शिकवे-शिकायतों की याद द्वारा उनसे कुसंगति करते रहेगें।**

FORGIVE AND FORGET AT ONCE.
MALICE AGAINST NONE.
LOVE FOR ALL.

5. प्रकृति की संगति —

संसार में अकाल पुरुष ने **अनगिनत, रंग-रूपो वाली सुहावनी-मनमोहक 'प्रकृति' की रचना की है** तथा स्वयं ही इस **'प्रकृति'** के अंदर गुप्त रूप में रवि रहिया परिपुर्ण है व अपने 'हुकुम' द्वारा **'कौतुकी क्रीड़ा' कर रहा है।**

कुदरति करि कै वसिआ सोइ ।। (पृ. ८३)

निकटि जीअ कै सद ही संगा ।।
कुदरति वरतै रूप अरु रंगा ।। (पृ. ३७६)

कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारु ।।.....
कुदरति जाती जिनसी रंगी कुदरति जीअ जहान ।।.....
कुदरति पउणु पाणी वैसंतरु कुदरति धरती खाकु ।।
सभ तेरी कुदरति तुं कादिरु करता पाकी नाई पाकु ।।
नानक हुकमै अंदरि केवै वरतै ताको ताकु ।। (पृ. ४६४)

बलिहारी कुदरति वसिआ ।।
तेरा अंतु न जाई लखिआ ।। (पृ. ४६९)

आपे जलि थलि वरतदा मेरे गोविदा रवि रहिआ नही दूरी जीउ ।।
हरि अंतरि बाहरि आपि है मेरे गोविदा
हरि आपि रहिआ भरपूरी जीउ ।। (पृ १७४)

हमारा मन 'माया' में खचित हो कर इतना स्थूल अथवा कठोर हो चुका है कि **हमें इस 'सुभान तेरी कुदरत' की ओर देखने की 'फुरसत' या 'आवश्यकता' ही महसूस नहीं होती ।** क्योंकि प्रकृति के अनगिनत स्वरूपों के 'दृश्य' तथा **सौन्दर्य को अनुभव करने व आनन्दित होने की हमारे अन्दर भावना ही नहीं होती ।**

बाग-बगीचे, पार्क अथवा जंगल में **प्रकृति के 'दर्शन' का आनन्द उठाने की** हमें फुरसत ही नहीं तथा न ही इसके लिए खर्चा व उद्यम करने के लिए तैयार होते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक शहर में कई बाग – बगीचे तथा पार्क होते हुए भी **बहुत थोड़े से प्राणी ही इनको देखने के लिए जाते हैं या आनन्द उठाते हैं।**

जब हम प्रकृति के **विलक्षण तथा सुन्दर स्वरूपों का आनन्द लेते हैं,** तब हम **प्रकृति से 'संग' अथवा 'संगति' करते हैं। प्रकृति की 'संगति' करने वाले तथा आनन्द उठाने वाले प्राणी बहुत ही कम होते हैं।**

परन्तु **प्रकृति के बाहरी रंग-रूप का आनन्द उठाना मन की 'मानसिक संगति' ही है।** जैसे — कवि, फिलोस्फर, चित्रकार, कोमल मन होने के कारण प्रकृति से साधारण जीवों की अपेक्षा अधिक लाभ लेते हैं।

इसके आगे गुरमुख जन प्रकृति के पीछे **'रवि रहे परिपूर्ण' कर्त्ता अथवा अकाल पुरुष के 'अस्तित्व' को बूझ, चीन्ह तथा पहचान कर, उस के —**

अस्तित्व
शक्ति
कलाकारी
कोमल गुण
रंग
रस
शोभा
सौन्दर्य
विलक्षण स्वरूपों के दर्शनों

का 'आनन्द लेकर' तथा उसकी 'समीपता' अथवा 'संगति' में श्रद्धा भावना, शुक्राना, प्रेम-स्वैपना, 'वाह-वाह', आश्चर्य तथा विस्माद का **'आत्म रंग' तथा 'रस' पान करते हुए , किसी अकथनीय विस्मादमयी मस्ती में बेखुद हो जाते हैं ।**

विसमादु रूप विसमादु रंग ।। विसमाद नागे फिरहि जंत ।।
विसमादु पउणु विसमादु पाणी ।। विसमादु अगनी खेडहि विडाणी ।।
विसमादु धरती विसमादु खाणी ।। विसमादु सादि लगहि पराणी ।।
विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि ।। विसमादु देखै हाजरा हजूरि ।।
वेखि विडाणु रहिआ विसमादु ।।
नानक बुझणु पूरै भागि ।। (पृ ४६३-४६४)

वाहु वाहु जलि थलि भरपूरु है गुरमुखि पाइआ जाइ ।। (पृ ५१५)

हउ बनु बनो देखि रही त्रिणु देखि सबाइआ राम ।।
त्रिभवणो तुझहि कीआ सभु जगतु सबाइआ राम ।। (पृ ४३७)

यह प्रकृति की 'आत्मिक संगति' है, जिस द्वारा हम **अनोखे ईश्वरीय आह्लाद के हिलोर अथवा झलकों का रंग-रस अनुभव करते हैं** — जिसे गुरबाणी में 'शबद' या 'नाम' कहा गया है ।

जलि थलि महीअलि गुपतो वरतै गुरसबदी देखि निहारी जीउ ।। (पृ ५९७)

कुदरति देखि रहे मनु मानिआ ।।
गुर सबदी सभु ब्रहमु पछानिआ ।। (पृ १०४३)

6. वचनों की संगति :-

मन के रव्यालों तथा भावों को भाषा के स्वरूप में रसना द्वारा **प्रकट करने को 'वचन' या 'बोली' कहा गया है ।**

हमारे **रव्यालों की 'रंगत' के अनुसार हमारे 'वचनों' की रंगत होती है ।** जैसे कि आदर-भाव, **श्रद्धा तथा प्यार के मनोभावों के प्रकटाव के लिए शान्तमयी, सुहावने, कोमल, मीठे वचन सहज–स्वभाव ही मुख से निकलते हैं** जिससे मन में **सत्कार, प्यार, ठंडक तथा श्रद्धा–भावना उत्पन्न होती है।**

इसके विपरीत — ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा के मनोभावों के प्रकटाव के लिए

कठोर, कडवे, फीके, हृदय-बेधक वचन प्रयोग किये जाते हैं, जिनसे ऐसी ही घृणा तथा बदले की भावनाएं उत्पन्न होती तथा तीक्ष्ण होती हैं।

यद्यपि ये कठोर वचन 'तीर की तरह' क्षण-पल में सुने तथा सुनाये जाते हैं, परन्तु इन **'वचनों' अथवा 'बोलों' का प्रभाव मन पर गहरा अंकित हो जाता है तथा लम्बे समय तक इन मानसिक घावों की 'चीसें' उठती रहती हैं।**

ऐसे ताने-व्यंग्य भरे तीक्ष्ण प्रहारों को बार-बार याद करके 'मानसिक घावों' को ताजा करते रहते हैं तथा इनकी गहरी पीढ़ा भरी चीसों में जलते, भुनते तथा कुढ़ते रहते हैं।

ऐसे **कठोर 'वचनों' को** —

सुनना,
सुनकर उनका **प्रभाव ग्रहण करना** तथा
बार-बार उन 'वचनों' को **घोटना**

ही 'वचनों' द्वारा 'कुसंगति' करनी है।

उदाहरण के रूप में किसी 'सास' द्वारा 'बहू' को **कोई ताना दिया जाये,** जैसे कि —

'कुलक्षणी', कुलटा
'मनहूस' आदि।

'सास' के ऐसे **'ताने'** अथवा **वचनों के तीर** बहू के मन, चित्त, हृदय की गहराईओं में धँस-बस-समा जाते हैं, जिन्हें नित्यप्रति याद कर के 'बहू' घृणा तथा कुढ़न की 'भट्टी' में जलती-भुनती रहती है। जिसके परिणाम स्वरूप 'मायके-ससुराल' दोनो परिवारों के बीच वैर-विरोध तथा घृणा द्वारा **फांसला बढ़ता जाता है।**

इस प्रकार जितनी तीक्ष्ण **भावना से ताने-व्यंग्य अथवा 'बोल के तीर' कसे जाते हैं,** सुनने वाले के मन-चित्त में उतना ही **गहरा 'घाव' हो जाता है,** जिसे सारी उम्र **'याद' द्वारा घोट-घोट कर अत्यन्त दुखी होते रहते हैं तथा अत्यन्त तीक्ष्ण तथा शक्तिमान बना लेते हैं।** जिसकी 'नोक' 'थूहर' के काँटे की तरह, **हर बार 'याद' अथवा संगति करते और गहरी धँसती जाती है।** इस प्रकार **'जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि'** वाली दशा हो जाती है तथा घृणा की जहरीली भावनाओं में जलते, सड़ते तथा कुढ़ते हुए नरक भोगते रहते हैं।

यहाँ **'द्रोपदी'** का ऐतिहासिक उदाहरण भी ठीक बैठता है जब मज़ाक में ही उसने कहा कि 'अन्धों के अन्धे ही होते हैं' तो यह **'बोल' तीक्ष्ण बाण की भाँति जा लगे** व इस वचन की 'कुसंगति' का इतना गाढ़ा, गहरा तथा तीक्ष्ण घाव हो गया कि इसके परिणाम स्वरूप 'द्रोपदी' को भरी सभा में नग्न करने की कोशिश की गयी तथा **कुरुक्षेत्र में महाभारत का युद्ध हुआ**, जिस भयानक लड़ाई में अनगिनत लोग मारे गए ।

अंदरि सभा दुसासणै मथेवालि द्रोपती आंदी ।
दूता नो फुरमाइआ नंग करहु पंचाली बांदी । (वा.भा.गु १०/८)

गुरबाणी में फीका बोलने का यूं निषेध तथा मनाही की गयी है —

नानक फिकै बोलिऐ तनु मनु फिका होइ ।। (पृ ४७३)

मंदा किसै न आखि झगड़ा पावणा ।। (पृ ५६६)

मंदा किसै न आखीऐ पड़ि अखरु एहो बुझीऐ ।। (पृ ४७३)

इकु फिका न गालाइ सभना मै सचा धणी ।।
हिआउ न कैही ठाहि माणक सभ अमोलवे ।।
सभना मन माणिक ठाहणु मूलि मचांगवा ।।
जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कही दा ।। (पृ. १३८४)

काँटा चुभते ही यदि उसे उसी समय निकाल दिया जाये, तो उस काँटे से उत्पन्न होने वाले **दुख-क्लेश से बच जाते हैं** । उसी प्रकार यदि शिकवे-शिकायतों-ताने अथवा कड़वे, **तीक्ष्ण बोलों को तत्काल 'कोई बात नहीं' या रहने-दो कह कर भुला दिया जाये तो इन 'बोलों' का हमारे मन पर कोई प्रभाव नहीं हो सकता** — परन्तु यदि इन तानों के कटाक्षमयी चुभने वाले तीरों को **बार-बार याद या 'संगति' की जाये** — तब यह अत्यन्त मानसिक दुख का कारण बनते हैं तथा हमारे तन, मन, हृदय तथा **अन्तःकरण में धँस-बस-समा कर अगले जन्मों में भी 'रूह' के साथ जाते हैं** ।

इतना ही बस नहीं — यदि इन **कटाक्षमयी तीक्ष्ण बोलों को मन में घोट कर अभ्यास किया जाए तो ये शब्द 'रूपमान' हो कर 'शक्तिमान' हो जाते हैं, मानसिक 'भूत-प्रेत' का रूप धारण करके हमें डराते रहते हैं तथा इन कटाक्षमयी बोलों की 'गुप्त धवनि' हमारे सूक्ष्म कानो में दिन-रात गूँजती रहती है जिससे हम और भी दुखी होते हैं ।**

दूसरे शब्दों में हम इन ताने-शिकवों को बार-बार 'याद' द्वारा घोट-घोट कर, डरावने 'प्रेत' की भांति रूपमान बना कर, उन से दिन रात **'मेल-जोल' अथवा 'संग'** करते रहते हैं तथा सूक्ष्म रूप में वाद-विवाद तथा झगड़ा करते हैं।

ऐसी लगातार कुढ़न से दिमाग पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ता है जिससे वहमों के शिकार बन कर मानसिक रोगी तथा पागल भी हो जाते हैं।

इसके ठीक **विपरीत** — जब गुर प्रसादि द्वारा बख्शे हुए गुरमुख प्यारों, सत्संगियों की संगति किये हुए प्यार वाले गुरमुख जनों की 'श्रद्धापूर्ण' **'बातें' या कथा कहानियां** सुनते हैं, तब इन गुरमुख प्यारों की **'ख्याली संगति'** करते हैं तथा हम उन के 'गुरमुख स्वरूप' के —

दर्शन करते हैं
मेल-जोल करते हैं
सत्संगति करते हैं
साध संगति करते हैं
आदान-प्रदान करते हैं
आत्मिक लाभ उठाते हैं
आत्मिक वाणिज्य व्यापार करते हैं
प्रेम-भावना अनुभव करते हैं
'प्रिम-रस' पीते हैं
श्रद्धा-भाव उत्पन्न होता है
रहस्मयी रंग में रंगे जाते हैं
प्रेम स्वैपना में उड़ान भरते हैं
प्रीत डोरी की पींघें लेते हैं
आत्मिक रस में अलमस्त मतवारे होते हैं
सुख-शांति अनुभव करते हैं
जन्म सफल करते हैं
यम से बचते हैं
आवागमन के चक्र से बचते हैं
गुरू के चरणों में समाते हैं।

इस **आत्मिक गुरमुख अवस्था में यदि कोई हमें बोल, ताना या व्यंग्य**

कसे भी तब भी हमारा मन उसे नहीं 'पकड़ता' तथा वह 'ऊपर से ही गुजर जाता' है अथवा 'सुन कर अनसुना' हो जाता है । ऐसी उच्च पवित्र अवस्था को यूं सम्मानित किया गया है —

एकु बोलु भी रववतो नाही साधसंगति सीतलई ।। (पृ ४०२)

कोई भला कहउ भावै बुरा कहउ हम तनु दीओ है ढारि ।। (पृ. ५२८)

नह निंदिआ नह उसतति जा कै लोभु मोहु अभिमाना ।।
हररव सोग ते रहै निआरउ नाहि मान अपमाना ।।.....
गुर किरपा जिह नर कउ कीनी तिह इह जुगति पछानी ।। (पृ. ६३३)

उसतति निंदा नानक जी मै हभ वजाई छोड़िआ हभु किझु तिआगी।।
हभे साक कूड़ावे डिठे तउ पलै तैडै लागी ।। (पृ ९६३)

इस गुरमुख अवस्था में रसना से **मीठे दिल खिंचवे बोल ही निकलेंगे,** जिन्हें सुन कर या उन्हें याद करके अथवा **'संगति' करके अन्य सत्संगियों तथा निकटवर्ती रूहों को भी लाभ मिलता है।**

गुरमुखि बोलहि सो थाइ पाए
मनमुखि किछु थाइ न पाई ।। (पृ ७५८)

दूसरे शब्दों में **प्यारे, मीठे, सुखदायी, दिल-कश वचनों द्वारा कठोर जंग लगे हृदयों में भी प्यार उत्पन्न होता है तथा आत्मिक प्रसन्नता व शांति मिलती है ।**

इसलिए हमें मीठे वचन **'बोलने'** का ताकीदी हुकुम है ।

गुरमुखि सदा सोहागणी पिरु राखिआ उर धारि ।।
मिठा बोलहि निवि चलहि सेजै रवै भतारु ।। (पृ. ३१)

मीठा बोले अंमित्र बाणी अनदिनु हरि गुण गाउ ।। (पृ८५३)

निवण सु अखरु खवपु गुण जिहबा मणीदा मंतु ।।
ए त्रै भैणे वेस करि तां वसि आवी कंतु ।। (पृ. १३८४)

गुरमुखि मिठा बोलणा जो बोलै सोई जपु जापै । (वा.भा.गु. ६/१८)
मिठा बोलण निव चलणु हथहु दे कै भला मनाए । (वा.भा.गु ८/२४)

बलिहारी तिन्हां गुरसिखां गुरमति बोल बोलदे मिठा । (वा.भा.गु १२/१)

गुरबाणी सतिगुरू जी के मुखारबिन्द से उच्चारित हुई है । यह बाणी अथवा 'वचन' **सतिगुरू के 'रसमयी', 'मीठे' तथा 'प्रिम-रस' वाले आत्मिक हृदय की सूक्ष्म प्रेम स्वैपना की प्रतीक है।** जिस कारण इस 'बाणी' को **'धुर की बाणी' अथवा 'सतिगुरू वचन'** कहा गया है ।

ऐसी ईश्वरीय बाणी के पाठ करने, श्रवण करने, विचार करने, आन्तरिक भाव अनुभव करने, कीरतन करने, संगति करने रस लेने, रंग में रंगने तथा जीअहु जाननें से जिज्ञासु **'बाणी रूप' ही हो जाता है** तथा सतिगुरू जी की **समीपता तथा दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करता है ।**

सची बाणी हरि पाईऐ हरि सिउ रहै समाइ ।। (पृ. ३६)

अंम्रित बाणी हरि हरि तेरी ।।
सुणि सुणि होवै परम गति मेरी ।।
जलनि बुझी सीतलु होइ मनूआ
सतिगुर का दरसनु पाए जीउ ।। (पृ. १०३)

गुर की सारवी अंम्रित बाणी पीवत ही परवाणु भइआ ।। (पृ ३६०)

सतिगुर बचन तुम्हारे ।।
निरगुण निसतारे ।। (पृ ४०६)

पूरे गुर की पूरी बाणी ।।
पूरे लागा पूरे माहि समाणी ।। (पृ. १०७४)

7. निगाह की संगति —

बिजली का 'करंट' (electric current) तारों में गुप्त रवि रहिआ परिपूर्ण होता है, परन्तु इस करंट का प्रकटाव किसी **विशेष प्वॉइन्ट** (point) जैसे कि 'बल्ब' (bulb) द्वारा ही होता है।

करंट की शक्ति (voltage) अनुसार ही 'बल्ब' में से कम या अधिक रोशनी प्रकट होती है।

प्रत्येक 'जीव' के अन्तर-आत्मा में ईश्वरीय 'जीवन-रौं' (Divine current) **सदैव गुप्त रवि रही परिपूर्ण है ।** इस **ईश्वरीय जीवन-रौं अथवा 'ईश्वरीय**

ज्योति' के प्रकटाव का बाहरमुख प्वॉइन्ट हमारी 'आंखें' ही है। इस ज्योति की रोशनी का आंखों द्वारा प्रकटाव हमारे मन की 'रंगत' अनुसार बढ़ता-घटता रहता है। यदि हमारे मन की रंगत **बहुत मैली हो,** तब आंखों की रोशनी भी **मलिन हो जाती है** । इसके विपरीत यदि मन **'निर्मल' हो, तब हमारी 'निगाह' की ज्योति शक्तिमान तथा तीक्ष्ण हो जाती है।**

दूसरे शब्दों में, हमारी **'निगाह' की शक्ति पर हमारे मन की 'रंगत' का प्रभाव पड़ता है** । यही कारण है कि **जब मन 'क्रोध' में होता है तब हमारी 'निगाह' डरावनी हो जाती है** तथा यदि हमारे मन में हमदर्दी, तरस, प्यार के भाव हों, तब हमारी **'निगाह' अथवा 'नदर' में इन 'दिव्य गुणो' की झलक दिखती है ।**

होता है राज-ए-इश्क ओ मुहब्बत का, इन्हीं से परदा फास
आंखें जुबां नहीं है, मगर बे-जुबां नहीं ।

मलिन तथा तुच्छ भावना वाली निगाह द्वारा ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, डर, शक, जलन, ईर्ष्या, द्वैत, घृणा तथा वैर-विरोध के मनोभाव तथा भावनाओं का प्रत्यक्ष प्रकटाव होता है।

दूसरी ओर 'दैवीय गुणों' की भावनाओं वाली 'निगाह' द्वारा हमदर्दी, दया, क्षमा, सत्कार, श्रद्धा, भरोसा, प्रेम, प्रीत, प्यार तथा परोपकार **की प्रबल भावनाओ का प्रकटाव होता है ।**

दूसरे शब्दों में, हमारे मन की 'रंगत' ही हमारी 'ऐनक' है जिस अनुसार हमारी निगाह की अच्छी-बुरी 'झलकों' का प्रकटाव होता है।

जब एक ही 'सतह' (wave length) वाली दो रूहों की **'निगाह का मेल या 'संगति' होती है,** तब वे **एक-दूसरे की ओर आकर्षित होती हैं तथा इसे कुदरती मेल कहा जाता है, जो अत्यन्त सुहावना तथा सुखदायी होता है।**

इसी प्रकार एक ही 'स्तर' पर **प्यार वाली दो रूहों की 'निगाहें' मिल जायें, तब उसे —**

अन्तर-आत्मिक मेल
आत्मिक संगति

दिलों के सौदे, रूहों का आदान-प्रदान, प्रीत, प्रेम, प्यार, प्रीत-डोरी, चुप-प्रीत, इश्क कहा जाता है ।

ऐसी **'निगाह' की एक 'दृष्टि' द्वारा दो रूहों के 'मेल' को गुरबाणी में यूं सम्मानित किया गया है।**

अंतर आतमै जो मिलै मिलिआ कहीऐ सोह ।। (पृ ७९१)

कुरबाणी तिन्हां गुरसिखां मनि मेली करि मेलि मिलंदे । (वा.भा.गु १२/२)

सतिगुर की **'नदरि करम'** तथा बख्शे हुए गुरमुखजनों की **निगाह द्वारा** —

जन्म-जन्म की मैल कट जाती है ।
करोड़ों पाप कट जाते हैं ।
मन निर्मल हो जाता है।
मन ईश्वरीय प्रेम प्रति आकर्षित होने लगता है ।
मन की कसौटी उच्च होती जाती है ।
'चुनाव' सही होता जाता है ।
'विवेक बुद्धि' प्रकाशमान होती है ।
'हुकुम' बूझा जाता है ।
आवागमन मिट जाता है ।
यम से छुटकारा हो जाता है ।

जिन कउ नदरि करमु तिन कार ।।
नानक नदरी नदरि निहाल ।। (पृ ८)

जिसु नदरि करे सो उबरै हरि सेती लिव लाइ ।। (पृ २८)

ब्रहम गिआनी की द्रिसटि अंम्रितु बरसी ।। (पृ २७३)

जिस नो तेरी नदरि न लेखा पुछीऐ ।। (पृ ९६१)

मरै न जंमै चूकै फेरी ।। (पृ १०५२)

जिसु ऊपरि नदरि करे करतारु ।।
तिस जन के सभि काज सवारि ।। (पृ ११३९-४०)

क्रिपा कटाख्य अवलोकनु कीनो दास का दूखु बिदारिओ ।। (पृ ६८१)

यक निगाहे लुतफि तो दिल में-बुरद ।।
बाजु मे दारम अज़ां ई इहतिआज ।। (भा.नंद लाल गजल नं १६)

इस प्रकार 'निगाह की संगति' द्वारा ही 'जीवों' का आपस में, अच्छी या बुरी 'संगति' अनुसार **आदान-प्रदान होता रहता है ।**

इस 'निगाह' द्वारा 'मेल' अथवा 'संगति' के नतीजों का उदाहरण दिया जाता है —

'स्त्री' की हस्ती एक ही होती है, **परन्तु उसे देखने वाली आँखों की 'भावना' अनुसार ही निगाह द्वारा 'संगति' तथा आदान-प्रदान होता है ।**

उदाहरण के रूप मे एक ही स्त्री को —

बच्चा — मां की भावना से लाड करता है ।
भाई — 'बहन' की भावना से प्यार करता है ।
मां-बाप— 'बेटी' की भावना से प्रतिपालन करते हैं ।
पति — 'पत्नि' की भावना से प्यार करता है ।
पराये — 'नारी' का स्वरूप ही देखते हैं ।
कामी — 'वाशना' से देखते हैं ।

इसका तात्पर्य यह है कि हम मन की **भावनारूप 'ऐनक' के रंग अनुसार ही प्रत्येक वस्तु या जीव को** —

देखते हैं ।
समझते हैं ।
परखते हैं ।
संग करते हैं ।
व्यवहार करते हैं ।
आदान-प्रदान करते हैं ।
वाणिज्य-व्यापार करते हैं ।

दूसरे शब्दों में हमारी **'निगाह' के पीछे मानसिक तथा आत्मिक 'रंगत' तथा शक्ति अनुसार ही एक दूसरे पर 'प्रभाव' पड़ता है ।**

इसी प्रकार श्रद्धालु जन — गुरुओं, अवतारो, साधुओं, संतों अथवा प्रभु प्रति भी अपनी-अपनी भावना अनुसार —

श्रद्धा-भाव रखते हैं ।
दर्शन करते हैं ।
'संगति' करते हैं ।
सेवा करते हैं ।
पूजा करते हैं ।
आदान-प्रदान करते हैं ।
लाभ उठाते हैं ।

गुरबाणी में इसे यूं दर्शाया है —

सतिगुरु सेवे ता सभ किछु पाए ।।

जेही मनसा करि लगौ तेहा फलु पाए ।। (पृ. ११६)

सतिगुर नो जेहा को इछदा तेहा फलु पाए कोइ ।। (पृ ३०२)

एक नदरि करि वेखै सभ ऊपरि जेहा भाउ तेहा फलु पाईऐ ।। (पृ ६०२)

दूसरे शब्दों में **'निगाह' द्वारा हम मन की 'रंगत' का प्रभाव बाहर प्रकट करते हैं तथा बाहर से आँखों द्वारा जो देखते हैं, उसका 'प्रभाव' अथवा 'असर' अपने मन, चित्त तथा अन्तःकरण में ले जाते हैं, जिससे मन की 'रंगत' बदलती रहती है ।**

इसलिए बख्शे हुए गुरमुख प्यारों, संतों, भक्तों, महापुरुषों के **'दर्शनों', द्वारा 'संगति' करने से अपार दैवीय गुण उत्पन्न होते हैं ।**

गुरबाणी में भी महापुरुषों के दर्शन दीदार करने के लिए यूं प्रेरणा की गयी है तथा याचना सिखलायी गयी है —

तिसु चरन परवाली जो तैरे मारगि चालै ।।
नैन निहाली तिसु पुरख दइआलै ।। (पृ १०२)

हिक दुं हिकि चाड़े अनिक पिआरे नित करदे भोग बिलासा ।।
तिना देखि मनि चाउ उठंदा हउ कदि पाई गुणतासा ।। (पृ ७०३)

जिन डिठिआ मनु रहसीऐ किउ पाईऐ तिन्ह संगु जीउ ।।
संत सजन मन मित्र से लाइनि प्रभ सिउ रंगु जीउ ।। (पृ ७६०)

साध कै संगि नही कछु घाल ।।
दरसनु भेटत होत निहाल ।। (पृ २७२)

जिन हरि गाइआ जिन हरि जपिआ तिन संगति हरि मेलहु करि मइआ ।।
तिन का दरसु देखि सुखु पाइआ दुखु हउमै रोगु गइआ ।। (पृ. १२६४)

गुर सिखी का देखणा गुरमुखि साधसंगति गुरदुआरा ।

(वा.भा.गु२८/७)

'निगाह' अथवा 'नदरि' द्वारा मन के 'स्तर' अनुसार ही 'मेल', 'संग', 'संगति', 'परसना', 'सांझ', 'आदान-प्रदान', व्यवहार **होता है ।**

(क्रमशः.....)